**ओ३म्**

**‘आओ, ईश्वर-ईश्वर खेलें’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 संसार का रचयिता ईश्वर सत्य, चेतन, आनन्दस्वरूप, संसार का स्वामी, रक्षक, पिता, सृष्टि में व्यापक, सर्वज्ञ, निराकार, सर्वशक्तिमान आदि गुणों वाला है। ईश्वर को जानने व समझने के लिए गुण व गुणी के सिद्धान्त को समझना आवश्यक है। हम जल पर विचार करते हैं। जल में आकार व रूप है। जल शीतल व प्यास बुझाने वाला है। अग्नि पर डालने से अग्नि बुझती है। अग्नि के सम्पर्क में आकर यह गर्म हो जाता है और वाष्प बनकर वायु के साथ आकाश में स्थित रहकर गति करता है तथा बादल बनकर बरसता है। यह सब गुण जल में हैं। हम यदि कहीं जल को देखते हैं तो इन गुणों के कारण ही हम उसे जल कहते हैं। यहां जल गुणी व द्रव, शीतलता आदि गुण हैं। जल जैसा आकार व रूप तो अन्य द्रवों में भी पाया जाता है परन्तु वह जल नहीं होते। उनके गुण जल से भिन्न होने के कारण उनको अन्य अन्य नाम दिये गये हैं। जल में मनुष्य व पशुओं की प्यास बुझाने वाला गुण है, यह गुण जल में आंखों से दिखाई नहीं देता। यदि हमें प्यास लगी हो और हम प्यास दूर करने के लिए किसी को कहे और वहां हमें कोई जल देता है, यदि हम बिना उसे देखे वा आंखे बन्द कर उसे पी लेते हैं और हमारी प्यास बुझ जाती है तो उसके रस व स्वाद तथा प्यास बुझने के गुण के कारण हम यह कहेंगे कि हमने जल पिया है। इसी प्रकार जब हम सृष्टि की रचना को देखते हैं तो हम सृष्टि रचना में जो गुण पाते हैं उन्हें जानकर यदि वह अपोरूषेय है तो उसे ईश्वर के द्वारा रची व निर्मित मान लेते हैं। हमारे सामने एक पुस्तक है। इसका लेखक, मुद्रक व प्रकाशक हमारे सामने नहीं है परन्तु हम उस पुस्तक को देखकर यह बिना किसी के बताये ही मान लेते हैं कि मनुष्य रूप में इसका लेखक, मुद्रक व प्रकाशक कोई अवश्य है। इसी प्रकार से सृष्टि में उपलब्ध अन्य अपौरूषेय पदार्थों को देखकर हमें इनके गुणी रचयिता ईश्वर का ज्ञान हो जाता है। सृष्टि रचना उसका एक गुण है। रचना जब भी होगी किसी रचयिता के द्वारा ही होगी। रचनाकार हमेशा निमित्त कारण होता है। वह बनाने वाला है, परन्तु केवल बनाने वाले से ही रचना नहीं होती, उसके लिए वह पदार्थ भी चाहिये होता है जिससे रचनाकार रचना करता है। रचना के प्रयोग में लाया गया वह पदार्थ उपादान कारण कहलाता है। किसी भी रचना का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। पुस्तक पाठकों के लिये है। कम्प्यूटर, मेज व कुर्सी उनके उपभोक्ताओं के लिये होती है। बिना उपभोक्ता या उपयोगकत्र्ता के रचनाकार रचना में प्रवृत्त नहीं होता। इसी प्रकार से इस सृष्टि का निमित्त कारण ईश्वर है। सृष्टि की रचना उसने मूल प्रकृति तो सत्व, रज व तम गुणों वाली है, उससे की है। यह सृष्टि व उसके पदार्थों की रचना जीवों वा मनुष्य-पशु-पक्षी आदि प्राणियों के सुखोपभोग लिये की गई है। इस विवरण से भी ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है। यदि ईश्वर व मूल प्रकृति न होती और यदि जीवात्मायें जो मनुष्यादि शरीरों का धारण ईश्वर के द्वारा करती हैं, न होतीं, तो यह संसार कदापि न रचा जाता अर्थात् इसका अस्तित्व न होता। अतः जितना हमें अपने और इस सृष्टि के अस्तित्व पर विश्वास है उतना ही विश्वास हमें सृष्टि के बनाने व जीवात्माओं को मनुष्य व पशु आदि प्राणियों के रूप में जन्म देने वाले ईश्वर पर भी करना चाहिये।

 कोई भी रचना चेतन पदार्थ व सत्ता द्वारा ही होती है। जड़ पदार्थ स्वयं मिलकर कोई बुद्धियुक्त रचना नहीं करते व कर सकते हैं। इसलिए ईश्वर चेतन पदार्थ है। चेतन का एक गुण आनन्द वा सुख-दुःख आदि गुणों से युक्त होना है। मनुष्यों व अन्य प्राणियों में हम समय-समय पर सुख व दुःख दोनों को होता हुआ देखते हैं। सुख की अवस्था में मनुष्य अपनी ज्ञान व सामथ्र्य के अनुसार कामों को करता है। रोगादि दुःख की अवस्था में वह कार्य नहीं कर पाता। ईश्वर ने इस अनुपमेय ब्रह्माण्ड को बनाया और उसका संचालन कर रहा है। यदि उसमें दुःख आता-जाता, तो वह इस रचना व इसका पालन व संचालन नहीं कर सकता था। अतः ईश्वर आनन्द स्वरूप सिद्ध होता है। इसका एक कारण यह भी है कि दुःख आत्मा को शरीर के द्वारा ही होते हैं व इसमें कुछ कारण जीवात्मा की अज्ञानता भी होती है। ईश्वर का शरीर नहीं है, वह निराकार और सर्वव्यापक है, एवं अज्ञानशून्य वा सर्वज्ञ है, अतः शरीर न होने और अज्ञानता न होने से वह दुःखों से सर्वथा रहित है। उसकी सृष्टि आदि रचना और कार्यों को देखकर वह सर्वज्ञ सिद्ध होता है। सर्वज्ञ का अर्थ है कि जो कुछ भी जानने योग्य है, वह उसे जानता है। सर्वज्ञता का उसका यह गुण अनादि व नित्य है, इस कारण वह सदा बना रहेगा, अल्प व न्यूनाधिक नहीं होगा। इसमें सर्वज्ञता स्वतः व स्वभाव से है। इसका कोई अन्य निमित्त कारण नहीं है। जैसे मनुष्य माता-पिता व आचायों अथवा पुस्तकों से ज्ञान अर्जित करता है, ईश्वर के लिए ज्ञान प्राप्ति का कोई साधन नहीं है जिससे उसने यह ज्ञान लिया हो। अतः उसकी सर्वज्ञता अनादि व उसके स्वयंभू स्वरूप के कारण से उसमें है।

 प्रत्येक वस्तु व पदार्थ का कोई न कोई स्वामी अवश्य होता है। इस संसार को देखने पर इसका स्वामी ईश्वर ही सिद्ध होता है। दूसरा कोई संसार का स्वामी होने का दावा करने वाला है ही नहीं। अतः वह स्वयंभू व संसार का स्वामी है। मनुष्य व अन्य प्राणियों को अपनी रक्षा की चिन्ता होती है जिस पर वह ध्यान देते हैं। संसार के सभी प्राणियों की रक्षा वही ईश्वर करता है। उसके निज नाम **‘ओ३म्’** का अर्थ ही रक्षा करने वाला है। यदि वह हमारी रक्षा न करता तो हम एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते थे। मनुष्य को कुछ क्षण वायु न मिले तो मृत्यु हो जाती है। हमें वायु को प्राप्त करने के कोई प्रयत्न नहीं करना होता। सारी पृथिवी के ऊपर उसने एक आवरण बनाया हुआ है। वह पूरी पृथिवी पर सर्वत्र उपलब्ध है। इसी प्रकार से जल, अग्नि व अन्नादि नाना पदार्थ भी पूरी पृथिवी पर उपलब्ध होते हैं जिनसे हमारी रक्षा होती है। अपनी रक्षा के लिये ईश्वर ने हमें बहुपयोगी दो हाथ व बुद्धि तथा शरीर में बल भी दिया है। आत्म-रक्षा के अन्य प्रकार भी हैं जिनका उपयोग कर हम स्वयं को सुरक्षित करते हैं। ईश्वर का जीवात्मा से पिता-पुत्र व आचार्य-शिष्य अथवा स्वामी-सेवक का सम्बन्ध है। ईश्वर ने हमें न केवल माता-पिता व आचार्य प्रदान किये हैं अपितु माता-पिता के हृदयों में सन्तान को जन्म देने व पालन करने की दिव्य भावनायें भी भरी हुई हैं। इसी प्रकार से आचार्यों में भी योग्य शिष्यों को अपना समस्त ज्ञान देने की भावना भी उसने भर रखी है। गुरू विरजानन्द सरस्वती व महर्षि दयानन्द सरस्वती इसका उदाहरण थे। जो ऐसा करते हैं वह सम्मानित व पूज्य होते हैं। आजकल शिक्षा व ज्ञान को बेचा जाता है। यह अमानवीय व अदैवीय कार्य है। यह वंदनीय नहीं अपितु अवन्दनीय है। ईश्वर से हमारा सम्बंध **स्वामी-सेवक** का है। हमें ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव व उसकी भावनाओं-अपेक्षाओं-आज्ञाओं को जानकर उसके अनुरूप गुणों का धारण व कर्तव्यों का निर्वाह करना है।

 ईश्वर ने यह विशाल ब्रह्माण्ड बनाया है, अतः वह एकदेशी तो हो हि नहीं सकता। एकदेशी सत्ता से जो रचना होगी वह ससीम व एकदेशी व दोषपूर्ण ही हो सकती है, असीम, अनन्त व निर्दोष नहीं। अतः वह सर्वव्यापक व सर्वत्र विद्यमान सिद्ध होता है। आंखों से आकाशवत् दिखाई न देने के कारण वह निराकार है। सर्वव्यापक सत्ता का निराकार होना भी तर्क व युक्ति संगत है। जीवात्मा एकदेशी व ससीम है। अतः ईश्वर व जीवात्मा का **व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध** है। जड़वत् आकाश के साथ भी जीवात्मा का यही सम्बन्ध है। ईश्वर का एक महत्वपूर्ण गुण उसका सर्वशक्तिमान होना है। इसका प्रमाण सृष्टि की रचना और जीवात्माओं का जन्म-मृत्यु का चक्र है। ईश्वर सर्वातिसूक्ष्म व सर्वव्यापक होने के साथ सर्वान्तर्यामी भी है। वह असंख्य वा अनन्त जीवात्माओं के अन्दर व बाहर विद्यमान है। जीवात्माओं के भीतर व बाहर विद्यमान होने के कारण ही उसे सर्वान्तर्यामी कहते हैं। चेतन व सर्वान्तर्यामी होने तथा हर पल जागृत अवस्था में होने से वह जीवात्मा के प्रत्येक विचार व कार्य को जानता व देखता है और अपनी कर्म-फल व्यवस्था से उसे जन्म-जन्मान्तर में उसके प्रत्येक शुभाशुभ कर्म का फल देता है। यजुर्वेद के 40/8 मन्त्र **‘स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।’** में ईश्वर ने मनुष्यों को महत्वपूर्ण शिक्षा दी है। ईश्वर ने बताया है कि वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् है। वह शुद्ध, सर्वज्ञ, सब का अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध, परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है। वह कभी शरीर धारण व जन्म नहीं लेता, जिस में छिद्र नहीं होता, नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता, जिस में क्लेश, दुःख, अज्ञान कभी नहीं होता, इत्यादि। इस पर महर्षि दयानन्द ने टिप्पणी की है कि जो-जो गुण ईश्वर में हैं, उनसे ईश्वर की स्तुति करना सगुण स्तुति है। ईश्वर में जो-जो गुण नहीं है, यथा शरीर धारण न करना, जन्म न लेना, नाड़ी आदि के बन्धन में न आना, पापाचरण न करना, क्लेश, दुःख व अज्ञान से रहित मानकर स्तुति करना है वह निगुर्ण स्तुति कहलाती है। इस सगुण व निर्गुण स्तुति को करते हुए मनुष्यों को अपने गुण, कर्म, स्वभाव भी उसी के अनुरूप बनाने चाहियें। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवें। और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुण-कीर्तन करता जाता है और अपने चरित्र को नहीं सुधारता, उसका स्तुति करना व्यर्थ है। **आजकल ऐसे लोगों की समाज में बहुतायत है।** महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत उपनिषद वचन **‘‘अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः श्रृणोत्यकर्णः। स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्रयं पुरूषं पुराणम्।।”** परमेश्वर के हाथ नहीं, परन्तु अपनी शक्तिरूप हाथ से सब का रचन व ग्रहण करता है। पग नहीं, परन्तु व्यापक होने से सब से अधिक वेगवान्, चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सब को यथावत् देखता, श्रोत्र नहीं तथापि सबकी बातें सुनता, अन्तःकरण नहीं, परन्तु सब जगत् को जानता है और उस को अवधि सहित जाननेवाला कोई भी नहीं। उसी को सनातन, सब से श्रेष्ठ सब में पूर्ण होने से पुरूष कहते हैं। सब इन्द्रियों और अन्तःकरण के बिना अपने सब काम अपने सामर्थ्य से करता है।

 ईश्वर विषयक इस लेख में जो चर्चा की गई है, वह पाठको को रूचिकर एवं ज्ञानवर्धक हो सकती है। पाठक स्त्यार्थप्रकाश, दर्शन, उपनिषद व वेद आदि का स्वाध्याय कर ईश्वर, जीवात्मा व सृष्टि विषयक वह सब अभीष्ट को जान सकते हैं। इन गन्थों में जो निर्दोष विद्या है वह किसी मत व पन्थ के ग्रन्थ वा धर्म-पुस्तकों में नहीं है। इस ज्ञान व योग दर्शन निहित यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि आदि साधनों के अभ्यास से इस जन्म सहित परजन्म में भी लाभ होता है। यह सब बातें तर्क, युक्तियों व सत्य शास्त्रों के प्रमाणों से सिद्ध है।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**